वैदिककालज्ञान

(क) वैदिक कालज्ञान की आवश्यकता

लगधमुनि के द्वारा वेदअनुसार वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए वैदिक संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, अधिकमास इत्यादि अवैदिक सूर्यसिद्धान्तादिमूलक प्रचलित पञ्चाङ्गों में लिखे गए संवत्सर, अयन, ऋतु, मास इत्यादि से भिन्न हैं। वैदिक संवत्सर-परिवत्सरादि के साथ ठीक-ठीक मिलकर चलनेवाले प्रभव-विभव इत्यादि षष्टिसंवत्सर **चान्द्र** हैं, किन्तु प्रचलित पञ्चाङ्गों के प्रभव-विभवादि षष्टिसंवत्सर **बार्हस्पत्य** हैं। वेदाङ्गज्योतिष के अनुसार दक्षिणायन लग चुकने पर भी प्रचलित पञ्चाङ्गों में उत्तरायण ही माना गया होता है, उत्तरायण लग चुकने पर भी दक्षिणायन ही माना गया होता है; ग्रीष्मऋतु लग चुकने पर भी वसन्त ऋतु ही माना गया होता है। वैदिक चान्द्र मास अमान्त हैं, किन्तु भारत के उत्तरभाग में प्रचलित अवैदिक पञ्चाङ्ग में लिखे गए चान्द्र मास पूर्णिमान्त हैं। श्रौत-स्मार्त धर्मकर्म के लिए अमान्त मास ही ग्राह्य होते हैं, पूर्णिमान्त चान्द्र मास तो शासकादि के लौकिक व्यवहार के लिए हैं। अतः वैदिक चान्द्रमास में और भारत के उत्तरभाग में प्रचलित पञ्चाङ्गों के चान्द्र मास में बहूत फर्क पड जाता है। प्रायः शुक्लपक्ष में दो मास का और कृष्णपक्ष में एक मास का फर्क पड जाता है। तपोमास का (वैदिक ऋतुबद्ध माघमास का) शुक्लपक्ष लग चुकने पर भी प्रचलित इन पञ्चाङ्गों में कभी मार्गशीर्षशुक्लपक्ष और कभी पौषशुक्लपक्ष लिखा रहता है। इस प्रकार मास में (महीने में) बहूत ही फर्क पड जाता है। वैदिक अधिकमास प्रचलित पञ्चाङ्गों के अधिक-मास से अत्यन्त ही पृथक् हैं। वैदिक अधिकमास (मलमास) सौर उत्तरायण के अन्त में शुचिमास में (आर्तव आषाढ में) अथवा सौर दक्षिणायन के अन्त में सहस्यमास में (आर्तव पौष में) ही पडते हैं। अन्य महीने में नहीं पडते हैं। यह बात **"उपजायेते मध्येऽन्ते चाऽधिमासकौ"** इस वेदाङ्गज्योतिषवचन में (श्लो.३७) स्पष्ट है। यह बात नेपाल के लिच्छविकाल से लेकर एक हजार वर्ष तक के इतिहास से भी समर्थित है। वैदिक अधिकमास वेदाङ्गज्योतिष के **"घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ"** (श्लो.८) इत्यादि वचन से भी सिद्ध होनेवाले दृक्सिद्ध यथार्थ सौर अयन के आधार में निश्चित होता है। वेदवेदाङ्ग में अनुल्लिखित और वैक्रमाब्द के प्रथम-द्वितीय शतक में प्रविष्ट विदेशी शकशासकों के साथ में आए हुए इरानी मगब्राह्मणों से लाए गए और शासक के बल और व्यवहार से भारतवर्ष में प्रचारित मेष, वृष इत्यादि राशि के आधार में सिद्धान्तशिरोमणि इत्यादि अर्वाचीन ग्रन्थों में पाई जानेवाली 'शुक्लपक्षप्रतिपदा से कृष्णपक्षअमावास्या तक का सौर-सङ्क्रान्तिविहीन चान्द्रमास अधिकमास (मलमास) होता है' ऐसा बतानेवाली विदेशिमूल के विचार के आधार में बनाई गई **"असङ्क्रान्ति-मासोऽधिमासः स्फुटं स्यात्"** इत्यादि अर्वाचीन परिभाषा वैदिक-सनातन-वर्णाश्रमधर्म में मान्य नहीं होती है। वैदिक धर्म में अनादि अनपभ्रष्ट परम्परा से आगत विषय ही मान्य होता है, अर्वाचीन काल में उद्भावित विषय मान्य नहीं होता है। वैदिक कालगणना में क्षयमास तो कभी भी नहीं होता है।

माध्यन्दिनीय-वाजसनेयि-शुक्लजुर्वेद-शाखाध्यायि ब्राह्मण तथा उनके शिष्ययजमानों का विवाह-व्रतबन्धादि कृत्य यथासम्भव पारस्करगृह्यसूत्र के विधानअनुसार ही होना आवश्यक होते हैं। पारस्करगृह्यसूत्र में **"उदगयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्याहे कुमार्याः पाणिं गृह्णीयात्"** (१।४।५) इस वचन से विवाह का वेदाङ्गज्योतिषादि वैदिक ग्रन्थअनुसार के उदगयन में (उत्तरायण में) ही होना आवश्यक होने पर भी दक्षिणायन में निरयण वृश्चिकमास में और वेदाङ्गज्योतिषादि वैदिक ग्रन्थअनुसार दक्षिणायन लगचुकने पर भी निरयण मिथुनमास में (आषाढ में) भी विवाहलग्न देनेवाले, शुक्लपक्ष में ही विवाह होने का निर्देश होने पर भी कृष्णपक्ष में भी विवाहलग्न देनेवाले तथा पारस्करगृह्यसूत्र में **"अथैनां सूर्यमुदीक्षयति तच् चक्षुरिति"** (१।८।७) ऐसा विधान होने से विवाहकर्म के मध्य में ही वधू को सूर्यदर्शन कराना आवश्यक होने से दिन में ही विवाह होना आवश्यक होने पर भी रात में भी विवाहलग्न देनेवाले पञ्चाङ्ग **माध्यन्दिनीयवाजसनेयिशुक्ल-**
भा.ज्व.१६
यजुर्वेदाध्यायी पारस्करगृह्यसूत्रानुसारी लोगों के श्रौतस्मार्तकर्म के लिए काल के निरूपण के लिए और उन कृत्यों के सङ्कल्प में काल के उल्लेख के लिए भी सर्वथा अनुसरणीय नहीं होते हैं। अतः केवल वैसे पञ्चाङ्गों के आधार पर श्रौत-स्मार्तकर्म के लिए संवत्सर-अयन-ऋतु-मास-अधिकमासादि काल का निर्णय नहीं करना चाहिए। वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए मूल वैदिक कालगणनासिद्धान्त को ठीक से समझकर प्रचलित दृक्सिद्धपञ्चाङ्ग की सहायता भी लेकर श्रौत-स्मार्तकर्म के लिए संवत्सर-अयन-ऋतु-मास-अधिमासादि का निर्णय किया जा सकता है। वैदिक धर्म के और मोक्ष के विषय में उपनयनपूर्वक वैध रूप में अध्ययन किए जानेवाले वेद-वेदाङ्गग्रन्थ ही मूल रूप में प्रमाण माने जाते हैं। अतः लगधमुनिप्रोक्त **"पञ्चसंवत्सरमयम्"** इत्यादि वेदाङ्गज्योतिषग्रन्थ के प्रतिकूल निर्णय भी देनेवाले सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि, महूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, खण्डखाद्यक, भास्वती इत्यादि ग्रन्थ श्रौत-स्मार्त-धर्मकर्म के लिए की जानेवाली संवत्सर-अयन-ऋतु-मास-अधिकमास-पक्ष-तिथियों की गणना में सर्वथा प्रमाण नहीं होते हैं। इस विषय में स्वाद्ध्यायशालाकुटुम्ब से वाराणसीस्थ चौखम्बाविद्याभवन से प्रकाशित करवाए गए (२००५ क्रै.) **वेदाङ्गज्योतिष के कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान** की भूमिका में विस्तृत रूप में स्पष्टीकरण किया गया है। वेद-वेदाङ्ग शास्त्र में और उनमें प्रतिपादित धर्म में आस्था रखनेवाले विज्ञजनों को इस विषय में ठीक से ध्यान देना और कुछ भी विमति अथवा शङ्का हो तो खुले रूप में लिखित शास्त्रार्थ भी करना आवश्यक हो गया है। अतः वेदाङ्गज्योतिष में बताए गए मूल वैदिक कालगणनासिद्धान्त का सार नीचे सङ्क्षेप में स्पष्ट और सरल रूप में बताया जाता है। योग-वार-राशियों का तो मूल वैदिकवाङ्मय में उल्लेख न होने से और भरतनाट्यशास्त्र तक में भी (द्र.– मूलमात्रसंस्करण २।३४, २।३८, २।४९, २।५१, ३।१५, ३।१६, ३।८१;

अभिनवभारतीयुक्त संस्करण २।३२, २।३६, २।४२-४४, ३।१६, ३।१८, ३।८१) उनका उल्लेख न होने से उनका अर्वाचीन काल में उद्भावन होने की बात स्पष्ट होने से श्रौत-स्मार्त कर्म के सङ्कल्प में उनका उल्लेख आवश्यक नहीं दीखता है।

वैदिक धार्मिक कृत्य का अमुक (फलाँ) अयन में, अमुक ऋतु में, अमुक महीने में, अमुक पक्ष में, अमुक तिथि में, अमुक नक्षत्र में, अमुक समय में अनुष्ठान करना चाहिए इस प्रकार के विविध विधान वेदादिशास्त्र में प्राप्त होते हैं। अतः वैदिक अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि इत्यादि का ज्ञान आवश्यक होता है। वैदिक अयन, ऋतु, मास इत्यादि प्रचलित अवैदिक सूर्यसिद्धान्तादिमूलक पञ्चाङ्गों में लिखित अयन, ऋतु, मास इत्यादि से कुछ पृथक् हैं, वैदिक अयनादि मुख्यतया चान्द्र हैं । अतः वैदिक कर्म के सङ्कल्पादि में प्रचलित पञ्चाङ्ग के आधार में अयन, ऋतु इत्यादि का उल्लेख करना उचित नहीं है। नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन (व्रतबन्ध), विवाह, और्ध्वदेहिककर्म, श्राद्ध, श्रौत-स्मार्तकर्म इत्यादि धर्मकृत्य मुख्य वैदिक धर्मकृत्य हैं। अतः उनका समयनिर्धारण करने में और सङ्कल्प करने में लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्ग-ज्योतिषानुसार निश्चित काल को लेना चाहिए।

(ख) वैदिककालज्ञान

लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की संस्कृत में विस्तृत भूमिका तथा कौण्डिन्न्यायनव्याख्यान नामक व्याख्या और हिन्दी में भी संक्षिप्त भूमिका तथा व्याख्या चौखम्बा विद्याभवन से प्रकाशित (२००५ क्रै.) है। उक्त वेदाङ्गज्योतिष ग्रन्थ विचारशील आस्तिक जनों की सुविधा के लिए संक्षिप्त हिन्दी व्याख्या के साथ में इसी ग्रन्थ में भी दिया गया है। उसी के मुख्य आधार में सङ्क्षिप्त वैदिक कालज्ञान सरल रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। अब वैदिक कालज्ञान के संस्कृत श्लोक तथा उनके अर्थ और स्पष्टीकरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

तिथिश् च करणम् भञ् च योगोऽथो वासराधिपः।
दिनरूपस्य कालस्य पञ्चाऽङ्गानीति लौकिकाः ॥१॥

तिथि, करण, नक्षत्र, विष्कम्भादि योग और वार ये पाँच दिनरूप काल के अङ्ग हैं ऐसा लोग मानते हैं। [उनमें सावनदिन से अभिन्न तिथि का और नक्षत्र का ही उल्लेख वेद में प्राप्त होता है। करण, योग और वार आथर्वण ज्योतिष में प्राप्त होते हैं। उनमें योग का उल्लेख स्पष्ट नहीं है। हरिवंश-चरकसंहिता–सुश्रुतसंहिता–भरतनाट्यशास्त्र–आश्वलायनगृह्यसूत्रपरिशिष्टों में भी योग का उल्लेख नहीं है। वार का उल्लेख महाभारत में और मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृतियों में भी नहीं पाया जाता है। वार की धारणा अरबदेशों से भारतवर्ष में घुसा हुआ माना जाता है। मूल वैदिक धर्मकृत्य में वार का महत्त्व नहीं है। अतः पत्रे को पञ्चाङ्ग कहने की बात भी मूल वैदिक परम्परा की नहीं है। पत्रे को **तिथिपत्र** कहना वैदिक परम्परा का अनुकूल है]॥१॥

सूर्योदयात् प्रभृति यो यावत् सूर्योदयम् परम्।
कालस् तत् सावनदिनं वैदिकैः परिकीर्तितम्॥२॥

एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक का काल वैदिकों से सावन-दिन कहा गया है। [सोमयाग के सोमसवन के लिए गणना किए जानेवाला एक दिन होने से इसको सावन-दिन कहा गया है। मूल वैदिक परम्परा में १ सावनदिन कहना और १ तिथि कहना सामान्यतया एक ही बात होती है]॥२॥

अहोरात्रविभागेषु अहश् चाऽऽद्यं प्रकीर्तितम्।
अहान्यस्तमयाऽन्तानि उदयाऽन्ता च शर्वरी॥३॥

रात-दिन के विभाग में दिन पहला बताया गया है। (रात दूसरा बताया गया है)। सूर्यास्त होने पर दिन समाप्त होता है। सूर्योदय होने पर रात समाप्त होती है (द्र.– महाभारत, आश्वमेधिकपर्व ४४।१८) [लोकव्यवहार में कलाई के रोवों को दिखाई देने के लिए पर्याप्त उजियाला होने पर दिन का प्रारम्भ माना जाता है। रात के १२ बजे से दिनाङ्क (डेट) का परिवर्तन और वार का परिवर्तन होने की बात वैदिक धार्मिक कृत्य में मान्य नहीं होती है]॥३॥

प्रात कालः सङ्गवश् च मध्याह्नश् चाऽपराह्णकः।
सायाह्नश् चेति भागाः स्युस् तुल्यमाना दिनस्य च॥४॥

प्रात काल, सङ्गव, मध्याह्न, अपराह्ण, सायाह्न ये पाँच भाग दिन के सूर्योदय से सूर्यास्तपर्यन्त के काल के बराबर रूप में लगाए गए पाँच भाग हैं [दिन के ये पाँच विभाग वेद से ही प्रसिद्ध हैं]॥४॥

पूर्वाह्णश् चाऽथ मध्याह्नोऽपराह्ण इति वा त्रयः।
समानमाना भागाः स्युर् दिने ह्यन्वर्थनामकाः॥५॥

पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण ये दिन के बराबर रूप में लगाए गए सार्थक नामवाले तीन भाग हैं॥५॥

त्रिंशन्मुहूर्तोऽहोरात्रः पक्षस् ते दश पञ्च च।
पक्षौ पूर्वाऽपरौ शुक्लकृष्णौ मासस् तु तावुभौ॥६॥

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है। अर्थात् एक रात-दिन में (एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय पर्यन्त) तीस मुहूर्त होते हैं। [मुहूर्तरूप काल वेद से ही प्रसिद्ध है]। १५ अहोरात्रों का एक पक्ष होता है। [यह प्रायिक बात है, एक वर्ष के २४ पक्षों में से प्रायः ६ पक्ष १४ अहोरात्रों के होते हैं।] पूर्वपक्ष शुक्लपक्ष है, अपरपक्ष कृष्णपक्ष है। उन दोनों पक्षों का एक (चान्द्र) मास होता है। [वेद से अमरकोश तक दिखाई देनेवाली इस बात से वैदिक परम्परा में मास मुख्य रूप में चान्द्र ही लिए जाने की बात भी अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है]॥६॥

चन्द्रस्याऽदर्शनाच् चैव यावदन्यददर्शनम्।
मासश् चन्द्रमितस् तस्य पक्षौ द्वौ शुक्लकृष्णकौ ॥७॥

शुक्ले पक्षे तथा कृष्णे पक्षयोरुभयोरपि।
दिनानि प्रथमाऽऽद्यानि तिथयस् ताः प्रकीर्तिताः ॥८॥

चन्द्रमा का एक अदर्शन से (एक अमावास्या के बीतने से) दूसरे अदर्शन तक (दूसरी अमावास्या तक) एक चान्द्रमास कहा जाता है। उसके शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष होते हैं। शुक्लपक्ष में और कृष्णपक्ष में दोनों पक्षों में प्रथम-द्वितीय-तृतीयादि जो दिन होते हैं वे तिथि कहे गए हैं। [वैदिक परम्परा में शुक्लपक्ष में सदा ही १५ दिन ही होते हैं, कृष्णपक्ष में कभीकभी चतुर्दशी टूटने से १४ दिन मात्र होते हैं। शुक्लपक्ष के प्रतिपदादि तिथियों को और कृष्णपक्ष के प्रतिपदादि तिथियों को भी प्रचलित पत्रे में १,२,३ इत्यादि रूप में लिखने का प्रचलन है। पूर्णिमाको १५ लिखकर जनाया जाता है। अमावास्या को ३० लिखकर जनाए जाने का प्रचलन है। प्रचलित पत्रे में तिथि के घटी पल भी लिखे गए होते हैं। किन्तु वैदिक धर्म में तो तिथियाँ एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक अखण्ड रूप में ही मानी जाती हैं। तिथियों में घटी पल का विचार नहीं होता है। कृष्णपक्ष की समाप्ति के घटी पल ही विचार में लिए जाते हैं]॥७-८॥

प्रतिपच् च द्वितीया च तृतीया च चतुर्थ्यपि।
पञ्चमी चैव षष्ठी च सप्तमी चाऽष्टमी ततः ॥९॥
नवमी दशमी चैकादशी च द्वादशी तथा।
त्रयोदशी चाऽथ चतुर्दश्यथो पौर्णमास्यमे ॥१०॥

तिथियों में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा ये शुक्लपक्ष की तिथियाँ हैं; प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, ... अमावास्या ये कृष्णपक्ष की तिथियाँ हैं।॥९-१०॥

उभयोः पक्षयोरन्तौ पञ्चदश्यौ प्रकीर्तिते।
उक्तं तत् पर्व प्रतिपत्पञ्चदश्योर् यदन्तरम् ॥११॥

दोनों पक्षों की अन्तिम तिथि को पञ्चदशी भी कहा गया है, पञ्चदशी का और प्रतिपदा का अन्तरालको पर्व कहा गया है॥११॥

नामानुसारं च शुभाऽशुभाः प्रतिपदादयः।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च तिथयः क्रमात् ॥१२॥

नामानुसार शुभ और अशुभ होनेवाली प्रतिपदादि तिथियाँ क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा कही जाती हैं, (नन्दा=१,६,११; भद्रा=२,७,१२; जया=३,८,१३; रिक्ता=४,९,१४; पूर्णा=५,१०,१५/३०)। [ये सञ्ज्ञाएँ प्राचीन मूल वैदिक ग्रन्थों में तो नहीं पाई जाती हैं।]॥१२॥

करणानि कौस्तुभं च बवं बालव-कौलवे।
तैतिलं च गराजिर् वाणिजं विष्टिर् बवादिकम् ॥१३॥

क्रमाच् शुक्लप्रतिपदस् तिथ्यर्धेषु भवन्ति हि।
कृष्णाऽन्ते शकुनिश् चतुष्-पदं च नागमेव च ॥१४॥

तिथि के आधे को करण कहा जाता है। करण शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से क्रमशः तिथि के आधे-आधे में कौस्तुभ (किंस्तुघ्न), बव, बालव, कौलव, तैतिल, गराजि (गर), वाणिज (वणिक्), विष्टि, बव, बालव ... इत्यादि रूप से आते हैं। कृष्णपक्ष के अन्त में तीन तिथ्यर्धों में क्रमशः शकुनि, चतुष्पद और नाग करण होते हैं। [इन करणों का आथर्वणज्योतिष में उल्लेख है। हरिवंश में, चरकसंहिता में, सुश्रुतसंहिता में और भरतनाट्यशास्त्र में तथा आश्वलायनगृह्यसूत्रपरिशिष्ट में भी करण का उल्लेख है। करण तिथि का ही आधा भाग होने से तिथि से ही गतार्थ होने से धर्मकृत्य के सङ्कल्प में इनका उल्लेख न भी किया जा सकता है। तथापि हेमाद्रि ने महासङ्कल्प में करण का उल्लेख होने की बात की है। अतः यहाँ भी इनका उल्लेख किया गया है। सरलता से करण का ज्ञान करने के लिए करणचक्र नीचे दिया जा रहा है।]॥१३-१४॥

तिथयः	शुक्लपक्षे		कृष्णपक्षे		तिथयः
	पूर्वार्धे	उत्तरार्धे	पूर्वार्धे	उत्तरार्धे	

१	कौस्तुभम्	बवम्	बालवम्	कौलवम्	१
२	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	२
३	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	३
४	वाणिजम्	विष्टिः	बवम्	बालवम्	४
५	बवम्	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	५
६	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	६
७	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	बवम्	७
८	विष्टिः	बवम्	बालवम्	कौलवम्	८
९	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	९
१०	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	१०
११	वाणिजम्	विष्टिः	बवम्	बालवम्	११
१२	बवम्	बालवम्	कौलवम्	तैतिलम्	१२
१३	कौलवम्	तैतिलम्	गराजिः	वाणिजम्	१३
१४	गराजिः	वाणिजम्	विष्टिः	शकुनिः	१४
१५	विष्टिः	बवम्	चतुष्पदम्	नागम्	३०

नक्षत्राणि कृत्तिकाश् च रोहिणी मृगशीर्षकम्।
आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यस् ततोऽश्लेषा मघास् तथा ॥१५॥

पूर्वफल्गुन्यौ च फल्गुन्यौ तथैवोत्तरे अपि।
हस्तश् चित्रा च स्वातिश् च विशाखे चाऽनुराधिकाः ॥१६॥

ज्येष्ठा मूलञ् च पूर्वाश् चाऽषाढास् ता उत्तरा अपि।
श्रवणश् च श्रविष्ठाश् च ततश् शतभिषक् परः ॥१७॥

पूर्वभद्रपदे चैवोत्तरभद्रपदे अपि।
रेवत्यश्वयुजौ चाऽपभरण्यश् चाऽप्यनुक्रमात् ॥१८॥

सत्ताईस नक्षत्र क्रमशः (१) कृत्तिका, (२) रोहिणी, (३) मृगशीर्ष, (४) आर्द्रा, (५) पुनर्वसु, (६) पुष्य (तिष्य), (७) अश्लेषा, (८) मघा, (९) पूर्वफल्गुनी, (१०) उत्तरफल्गुनी, (११) हस्त, (१२) चित्रा, (१३) स्वाति, (१४) विशाखा, (१५) अनुराधा, (१६) ज्येष्ठा, (१७) मूल, (१८) पूर्वाषाढा, (१९) उत्तराषाढा, (२०) श्रवण, (२१) धनिष्ठा, (२२) शतभिषक् (शतभिषा), (२३) पूर्वभद्रपद, (२४) उत्तरभद्र-पद, (२५) रेवती, (२६) अश्वयुक् (अश्विनी) और (२७) अपभरणी (भरणी) ये हैं।

[आजकल लोक में अश्विनी, भरणी, कृत्तिका इत्यादि गणना का प्रचलन है, किन्तु वेदों में, वेदाङ्गज्योतिष में, याज्ञवल्क्यस्मृति में और कतिपय पुराणों में भी कृत्तिकादि नक्षत्रगणना देखी जाती है, अतः यहाँ कृत्तिकादि गणना दी गई है। सङ्कल्प में नक्षत्र का वचन और विभक्ति मिलाने के लिए 'कृत्तिकासु नक्षत्रे', 'रोहिण्यां नक्षत्रे' इत्यादि कहना चाहिए। अतः सङ्कल्प में नक्षत्रों का कृत्तिकासु, रोहिण्याम्, मृगशीर्षे, आर्द्रायाम्, पुनर्वस्वोः, पुष्ये (तिष्ये), अश्लेषासु, मघासु, पूर्वफल्गुन्योः, उत्तरफल्गुन्योः, हस्ते, चित्रायाम्, स्वातौ (स्वात्याम्), विशा-खयोः, अनुराधासु, ज्येष्ठायाम्, मूले (मूलबर्हण्याम्), पूर्वाषाढासु, उत्तराषाढासु, श्रवणे, श्रविष्ठासु (धनिष्ठासु), शतभिषजि, पूर्वभद्रपदयोः, उत्तर-भद्रपदयोः, रेवत्याम्, अश्वयुजोः, अपभरणीषु (भरणीषु) ऐसे रूपों का प्रयोग करना चाहिए। वैदिक मूल परम्परा ठीक से न समझनेवाले कुछ पण्डित दूसरी रीति दिखाते हैं। वैसा प्रयोग उचित नहीं है।] ॥१५-१८॥

यत्राऽहोरात्रके यस्य नक्षत्रस्य तु सन्निधौ।
भवेच् चन्द्रस् तस्य तद् धि नक्षत्रमिति कथ्यते ॥१९॥

जिस अहोरात्र में जिस नक्षत्र के समीप में चन्द्रमा की स्थिति होती है, उस नक्षत्र को उस अहोरात्र का नक्षत्र कहा जाता है। [कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, हस्त, चित्रा, स्वाति, अनुराधा, ज्येष्ठा इत्यादि कतिपय नक्षत्र को आकाश में स्पष्ट रूप में आसानी से देखा जा सकता है।] ॥१९॥

चन्द्रचारेषु चन्द्रस्य कृत्तिकास्वम्बया सह।
यदा योगो भचक्रस्य तदाऽऽरम्भो हि वैदिकः ॥२०॥

चन्द्रमा के भ्रमण में चन्द्रमा का कृत्तिका की ताराओं में से पहली अम्बा नाम की तारा के साथ जिस समय में योग होता है, उसी समय में वहीं से वैदिकों के मत में नक्षत्रचक्र का प्रारम्भ होता है॥२०॥

तत्तद्भानामन्यदीयमते प्रारम्भतः परम्।
पञ्चमांशत्रये प्रायोऽतीते ह्यादिस् तु वैदिकः॥२१॥

अन्य ज्योतिषियों के मत में उस-उस नक्षत्र का प्रारम्भ जिस समय में होता है उस समय से उस नक्षत्र के भोगकाल के पाँच भागों में से लगभग तीन भाग बीतने पर वैदिकों के मत में उस नक्षत्र का प्रारम्भ माना जाता है॥२१॥

"अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर् बृहस्पतिः।
सर्पाश् च पितरश् चैव भगश् चैवाऽर्यमाऽपि च॥२२॥

सविता त्वष्टाऽथ वायुश् चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वे देवास् तथैव च॥२३॥

विष्णुर् वसवो वरुणोऽजएकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्न्यस् तथा पूषा अश्विनौ यम एव च॥२४॥

नक्षत्रदेवता ह्येता एताभिर् यज्ञकर्मणि।
यजमानस्य शास्त्रज्ञैर् नाम नक्षत्रजं स्मृतम्॥२५॥"

कृत्तिकादि नक्षत्रों के देवता क्रमशः (१) अग्नि, (२) प्रजापति, (३) सोम, (४) रुद्र, (५) अदिति, (६) बृहस्पति, (७) सर्प, (८) पितर, (९) भग, (१०) अर्यमा, (११) सविता, (१२) त्वष्टा, (१३) वायु, (१४) इन्द्राग्नि, (१५) मित्र, (१६) इन्द्र, (१७) निर्ऋति, (१८) अप्, (१९) विश्वेदेव, (२०) विष्णु, (२१) वसु, (२२) वरुण, (२३) अज एकपात्, (२४) अहिर्बुध्न्य, (२५) पूषा, (२६) अश्विनीकुमार और (२७) यम ये हैं। यज्ञकर्म के लिए यजमान का नक्षत्रनाम इन्हीं देवतानामों से रखना चाहिए ऐसा शास्त्रज्ञों ने कहा है। [वैदिक परम्परा में नक्षत्र-अनुसार के नाम 'चूचेचोला अश्विनी' इत्यादिअनुसार नहीं रखा जाता है। नक्षत्र के देवता के अनुसार रखा जाता है; जैसे— कृत्तिका नक्षत्र में जन्मे हुए जातक का नाम 'अ-इ-उ-ए कृत्तिका' इस कथनअनुसार न रखकर कृत्तिका के देवता अग्नि होने से अग्निगुप्त, अग्निजुष्ट, अग्नित्रात, अग्निदत्त, अग्निदिष्ट, अग्निपात, अग्निरात, अग्निलात, अग्निदयिता, अग्निरक्षिता, अग्निपालिता इत्यादि रूप में रखा जाता है। श्रौत-स्मार्त-यज्ञकर्म के लिए नक्षत्रनाम उक्त प्रकार से रखने के बाद फलितज्योतिष में विशेष आग्रह होनेवालों का चूचेचोला इत्यादिअनुसार राशि का अतिरिक्त नाम भी रखते रहना भी हो सकता है।]॥२२-२५॥

सूर्यचन्द्रस्थितिवशाद् योगा विष्कम्भकादयः।
भवन्ति तेषां नाम्नैव विज्ञेयञ् च शुभाऽशुभम्॥२६॥

१ २ ३ ४ ५
विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस् तथा।
६ ७ ८ ९ १०
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलश् च गण्डकः॥२७॥
११ १२ १३ १४ १५
वृद्धिर् ध्रुवश् च व्याघातो हर्षणो वज्र एव च।
१६ १७ १८ १९ २०
सिद्धिस् तथा व्यतीपातो वरीयान् परिघश् शिवः॥२८॥
२१ २२ २३ २४ २५ २६ २७
सिद्धिस् साध्यश् शुभश् शुक्लो ब्रह्मा ऐन्द्रश् च वैधृतिः।
इति योगास् तु सङ्कल्पे कीर्तनीया जनैस् स्मृताः॥२९॥

सूर्य की और चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार विष्कम्भादि योग होते हैं, उनका शुभत्व और अशुभत्व नामअनुसार जानना चाहिए। लोगों द्वारा विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मा, ऐन्द्र और वैधृति ये २७ योग सङ्कल्प में उल्लेखनीय माने गए हैं। [इन योगों का मूल वैदिक परम्परा में विशेष उल्लेख नहीं देखा जाता है। शाकद्वीप(इरान-अफगानिस्तान) से आए हुए मगब्राह्मण के कुल के आर्यभट के अनुयायी लल्ल के रत्नकोष-नामक ग्रन्थ के आधार में बनाए गए माने गए श्रीपतिकृत रत्नमालानामक वैक्रमाब्द के ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में बने हुए मुहूर्तग्रन्थ में विष्कम्भादि योग का उल्लेख प्राप्त होने की बात इतिहासलेखकों ने लिखा है। अतः वैदिककर्म के सङ्कल्प में विष्कम्भादियोग का उल्लेख अत्यावश्यक नहीं दीखता है]॥२६-२९॥

आदित्यश् चाऽथ सोमश् च मङ्गलश् च बुधोऽपि च।
बृहस्पतिश् शुक्र-शनी स्युः क्रमाद् वासराधिपाः ॥३०॥

इतवार (आदित्यवार, रविवार), सोमवार (चन्द्रवार), मङ्गलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार (गुरुवार), शुक्रवार, शनिवार (शनैश्चरवार) ये सात वार हैं। [ये लोकव्यवहार में आजकल अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, किन्तु वैदिक परम्परा के मूल ग्रन्थों में इन वारों का उल्लेख नहीं है। अत एव इनका भी वैदिक धार्मिक कृत्य के सङ्कल्प में उल्लेख अत्यावश्यक नहीं है]॥३०॥

तपस्-तपस्यौ च मधु-माधवौ शुक्रकः शुचिः।
नभो-नभस्यौ चेषोर्जौ सहाश् चैव सहस्यकः ॥३१॥

तपः (तपाः), तपस्य, मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः (नभाः), नभस्य, इष, ऊर्ज, सहः (सहाः), सहस्य ये बारह मासों के नाम हैं। [ये वैदिकों के वेदमन्त्रसंहिताओं में भी उल्लिखित महीनों के मुख्य नाम हैं। इनका उल्लेख पुराण-अमरकोष पर्यन्त में भी पाया जाता है। इनको माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख इत्यादि भी कहने की परम्परा है। तथापि लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष की परिनिष्ठित परिभाषा के अनुसार जिस काल का अवधि तपोमास कहा जाता है, उसी काल के अवधि को माघ कहा जाता है ऐसा माना जा सकता है। प्रचलित पत्रे में माघ कहे गए मास को वैदिकों का तपोमास (अथवा वैदिक आर्तव माघमास) नहीं समझना चाहिए। लगधमुनि की व्याख्या के अनुसार सूर्य का उत्तरायणारम्भ का दिन (अर्थात् पत्रे में लिखे गए सब से अल्प दिनमानवाले दिनों के बीच का दिन) जिस शुक्लप्रतिपदा से अमावास्या पर्यन्त के चान्द्रमास के प्रारम्भ के २४ दिनों के अन्दर पडता है, वह चान्द्रमास वैदिक तपोमास अथवा वैदिक आर्तव माघमास होता है[१]। पच्चीसवें-छब्बीसवें इत्यादि दिनों में वह दिन पडे तो वैसा चान्द्रमास वैदिक अधिकमास (मलमास) होता है[२] और उस अधिकमास के बाद आनेवाली शुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ होनेवाला चान्द्रमास वैदिक तपोमास वा वैदिक आर्तव माघमास होता है।]॥३१॥

सूर्यगत्यनुगौ चान्द्रौ वैदिकद्विजसम्मतौ।
द्वौद्वौ तप प्रभृतिकौ मासावृतुरिहोदितः ॥३२॥
शिशिरश् च वसन्तश् च ग्रीष्मो वर्षास् तथा शरत्।
हेमन्तश् चेति ऋतवः क्रमान् मासद्वयात्मकाः ॥३३॥

वैदिक ब्राह्मणों के सम्मत तपोमास तपस्यमास इत्यादि सूर्यगतिविशेष के अनुगामी दो-दो चान्द्रमासों को वैदिकधर्मकृत्य में एक ऋतु कहा गया है। [दो चान्द्र मासों का एक ऋतु होने की बात वेदमन्त्रसंहिता से अमरकोश तक भी दीखनेवाली वैदिक परम्परा से भी अवगत होने से अवैदिक सूर्यसिद्धान्त के अथवा तेरहवीं शताब्दी में रचित सिद्धान्तशिरोमणि के अथवा किसी प्रक्षिप्त पुराणवचन के कथन में लगकर वैदिकों के लिए ऋतुओं को दो सौर मासों से बननेवाला मानकर धर्मकृत्य करना और सङ्कल्प में उल्लेख करना भी उचित नहीं होता है।]

शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त ये दो-दो चान्द्र मासों के ऋतु क्रमशः आते हैं। [कालगणना का आधारभूत प्रकृतिसिद्ध वैदिक आर्तव (ऋतुसम्बद्ध) वर्ष का प्रारम्भ उक्त प्रकार की तपश्शुक्लप्रतिपदा में (वैदिक आर्तव माघशुक्लप्रतिपदा में) शिशिर ऋतु के आदि में होता है।]॥३२–३३॥

उत्तरायणमत्रोक्तमृतुभिश् शिशिरादिभिः।
त्रिभिर् वर्षादिभिः प्रोक्तमृतुभिर् दक्षिणायनम् ॥३४॥

वैदिक धर्मकृत्य में शिशिरादि तीन सौरचान्द्र ऋतुओं से (शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म इनसे) निष्पन्न अयन उदगयन अथवा उत्तरायण कहा गया है, वर्षादि तीन ऋतुओं से (वर्षा-शरद्-हेमन्त इनसे) निष्पन्न अयन दक्षिणायन कहा गया है। [इस प्रकार वैदिक धर्मकृत्य में अयन भी सौरचान्द्र ही होता है। जिस चान्द्र मास में सूर्य का उदगयन लगता है उसी चान्द्र मास के आरम्भ की शुक्लप्रतिपदा में धर्मकृत्य के लिए उदगयन (उत्तरायण) भी लगने की और जिस चान्द्र मास में सूर्य का दक्षिणायन लगता है, उसी चान्द्र महीने के प्रारम्भ की शुक्लप्रतिपदा में दक्षिणायन भी लगने की बात मानी जाती है। यह बात गत रात्रि में आधी रात के बाद अथवा आगामी रात्रि में आधी रात से पूर्व सूर्यसङ्क्रमण होने पर भी इस सूर्योदय से ही सौर मेषमास-वृषमासादि मास के दिनों की गणना का प्रारम्भ जैसे किया जाता है वैसी ही है]॥३४॥

आर्यावर्ते तु मध्याह्नेऽहस्सु दीर्घतमा यदा।
शङ्कोश् छाया ततस् सूर्यः प्राप्नुयादुत्तरायणम् ॥३५॥

आर्यावर्त में दिनों में मध्याह्न में शङ्कु की (समतल भूमि में सीधा खडे किए गए खूँटे की) छाया सबसे लम्बी जिस समय में होती है, उसी समय से सूर्य उदगयन में (उत्तरायण में) जाना प्रारम्भ करते हैं॥३५॥

---

१. तपोमास के विषय में अधिक बात इसी ग्रन्थ के ३७,१४०,१५९ पृष्ठों में देखें।

२. वैदिक अधिकमास के विषय में इसी ग्रन्थ के ९५–१०२ पृष्ठों में देखें।

आर्यावर्ते हि मध्याह्नेऽहस्सु ह्रस्वतमा यदा।
शङ्कोश् छाया ततः सूर्यः प्राप्नुयाद् दक्षिणायनम्॥३६॥

आर्यावर्त में दिनों में मध्याह्न में शङ्कु की (समतल भूमि में सीधे खडे किए गए खूँटे की) छाया सब से छोटी जिस समय में होती है, उसी समय से सूर्य दक्षिणायन में जाते हैं॥३६॥

आर्यावर्ते ह्रस्वतमाद् दिनात् सौरोत्तरायणम्।
दिनाद् दीर्घतमात् सौर-दक्षिणायनमिष्यते॥३७॥

आर्यावर्त में सब से छोटे दिन से सूर्य का उत्तरायण और सब से लम्बे दिन से सूर्य का दक्षिणायन माना जाता है॥३७॥

सूर्यस्योदङ्मुखीभावात् षद्-सप्तादिदिनोत्तरा।
याऽमावास्या तत्र पूर्णे मासे वर्षं प्रवर्तते॥३८॥

सूर्य उत्तर की ओर आवर्तित होने के दिन से न्यून से न्यून में भी छः-सात दिन पीछे की जो अमावास्या होती है, उस अमावास्या में पूर्ण होनेवाले चान्द्र मास में वैदिक सौरचान्द्र नववर्ष लगता है॥३८॥

तस्य मासस्य या शुक्लप्रतिपत् तत एव च।
इज्यार्थं वर्षमयनमृतुर् मासश् च गण्यते॥३९॥

उस चान्द्र मास की जो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा होती है, उसी दिन से वैदिक धार्मिक कृत्य के लिए (नया) वर्ष, (नया) अयन, (नया) ऋतु और (नया) मास भी गिने जाते हैं॥३९॥

तत्राऽयनं चोत्तरं स्यादृतुश् च शिशिरो भवेत्।
मन्त्रोक्तश् च तपा मासो माघो ब्राह्मणकीर्तितः॥४०॥

वहाँ अयन उत्तरायण होता है, ऋतु शिशिर होता है, मास वेदमन्त्र में श्रुत तपोमास होता है, यही तपोमास ब्राह्मणग्रन्थ में कहा गया माघमास है॥४०॥

तपोमासो वेदमन्त्रे श्रुतो लगधभाषितः।
यस् तत्राऽनादिसङ्केतस् तपश्शब्दस्य चोचितः॥४१॥

वेदमन्त्र में श्रुत और लगधमुनि से परिभाषित किया गया जो तपोमासरूप काल है, उसी में तप शब्द का अनादि सङ्केत मानना उचित है॥४१॥

तपोमासाऽभिन्न एव माघो वैदिकसम्मतः।
न त्वन्यो राशिमादायाऽर्वाचीनैः परिभाषितः॥४२॥

उक्त प्रकार का जो तपोमास होता है, उससे अभेद होनेवाला माघमास ही वैदिकों का सम्मत होता है; वेद में, वेदाङ्गों में, मनुस्मृति-याज्ञवल्क्यस्मृति-महाभारत इत्यादि में भी अनुपलब्ध मेष, वृष इत्यादि राशि को लेकर अर्वाचीन जनों से परिभाषित आधुनिक प्रचलन में विद्यमान पत्रे में उल्लिखित माघादि मास वैदिकों का सम्मत नहीं होता है॥४२॥

एवं माघस् तपोऽभिन्नो यदा भवति निश्चितः।
तदा तपस्याद्यभिन्नाः फाल्गुनाद्याश् च निश्चिताः॥४३॥

इस प्रकार जब माघमास लगधमुनिद्वारा परिभाषित तपोमास से अभिन्न होने की बात निश्चित होती है, तब फाल्गुनादि मास भी वेदमन्त्रोक्त तपस्यादि मास से अभिन्न होने की बात भी निश्चित होती है॥४३॥

मासास् ते ऋतुबद्धा हि वेदमन्त्रेषु कीर्तिताः।
पाणिन्युक्तनिरुक्तिस् तु रूपज्ञानप्रयोजना॥४४॥

वेदमन्त्रों में उल्लिखित तपस्-तपस्यादि वे मास ऋतुबद्ध ही हैं। पाणिनि से प्रोक्त **'साऽस्मिन् पौर्णमासीति'** (अष्टाध्यायी ४।२।२१) यह निर्वचन तो शब्दरूपज्ञान के प्रयोजन के लिए है॥४४॥

तस्मान् नक्षत्रबद्धत्वं मासानां वैदिकैरिह।
नैवाऽऽस्थेयं यतो वर्षं चाऽऽतर्वं वैदिकोचितम्॥४५॥

अतः वैदिक धार्मिक कृत्य में तपस्-तपस्यादि मासों का नक्षत्रबद्धत्व वैदिकों को नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वैदिकों के लिए उचित सौरचान्द्र वर्ष भी आर्तव है नक्षत्रबद्ध नहीं॥४५॥

सौरेऽयने सप्त दर्शाः सपञ्चषदिनेऽपि च।
यदा दर्शे सप्तमे तु पूर्णो मासस् तदाऽधिकः॥४६॥

अन्त में अतिरिक्त पाँच-छः दिनों से युक्त एक सौर अयन में जब ७ अमावास्याएँ पडती हैं, उस समय उस अयन की सातवीं अमावास्या में पूर्ण होनेवाला चान्द्रमास वैदिक अधिकमास (मलमास) होता है॥४६॥

कृष्णपक्षे तु नवमीमप्यतिक्रम्य भास्करः।
यत्राऽयनान्तरं गच्छेद् मासोऽमान्तो हि सोऽधिकः॥४७॥

कृष्णपक्ष में नवमी को भी लाँघकर दशमी-एकादशी इत्यादि में सूर्य दूसरे अयन में जाते हैं तो वह अमान्त चान्द्रमास अधिकमास (मलमास) होता है॥४७॥

वैदिकानां तु वर्षादि सौरचान्द्रं प्रकीर्तितम्।
अयनं विषुवं सूर्यान् मासं चन्द्रात् प्रतर्कयेत्॥४८॥

वैदिकों का वर्ष, अयन, ऋतु इत्यादि सौरचान्द्र (अधिकमासव्यवस्थाद्वारा सूर्यगति से नियन्त्रित और मुख्य रूप में चान्द्र) माने गए हैं। सौर अयन और विषुव को सूर्य से और महीने को चन्द्रमा से विचार करे॥४८॥

द्वाभ्यां हि अयनाभ्यां स्याद् वर्षं सवँवत्सरादिकम्।
सवँवत्सरस् तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः॥४९॥

ततश् चेदावत्सरश् च तुर्य इद्वत्सरः श्रुतः।
वत्सरः पञ्चमोऽब्दः स्यात् पञ्चाऽब्दस्य युगस्य च॥५०॥

दो अयनों से संवत्सरादि १ वर्ष होता है। वैदिक पाँच वर्षों के युग में संवत्सर पहला वर्ष, परिवत्सर दूसरा वर्ष, उस के बाद (तीसरा) इदावत्सर, चौथा इद्वत्सर रूप में वेदमन्त्र में सुना गया है, पाँचवाँ वर्ष वत्सर रूप में सुना गया है [इन इदावत्सरादि कुछ वत्सरों के नामों में वेदों की विभिन्न शाखाओं में कुछ भेद मिलता है]॥४९-५०॥

तेषां विपरिवर्तैश् च युगद्वादशकं स्मृतम्।
वैष्णवाद्याह्वयं चान्द्रवत्सरं वैदिकानुगम्॥५१॥

उन पाँच वर्षों के समूह की परिक्रमा से वैदिक-सिद्धान्तानुसारी चान्द्रवर्षनिष्पाद्य वैष्णव-बार्हस्पत्यादि नामवाले १२ युगों का समुदाय (युगसङ्घ) निष्पन्न होनेवाला माना गया है॥५१॥

वैष्णवम्[१] प्रथमन् तत्र बार्हस्पत्यन्[२] ततः परम्।
ऐन्द्रम्[३]आग्नेयञ्[४] च त्वाष्ट्रम्[५]आहिर्बुध्न्यञ्[६] च पित्र्यकम्[७]॥५२॥
वैश्वदेवञ्[८] च सौम्यञ्[९] च ऐन्द्राग्नञ्[१०] चाऽऽश्विनन्[११] तथा।
भाग्यञ्[१२] चेति द्वादशैव युगानि कथितानि हि॥५३॥

पहला वैष्णव, उस के बाद बार्हस्पत्य, ऐन्द्र, आग्नेय, त्वाष्ट्र, आहिर्बुध्न्य, पित्र्य, वैश्वदेव, सौम्य, ऐन्द्राग्न, आश्विन और वैसा ही भाग्य, ये बारह युग बताए गए हैं॥५२–५३॥

“स्वराक्रमेते सोमाऽर्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात् तदाऽऽदियुगम् माघस् तपश्शुक्लोऽयनं ह्युदक्॥५४॥”

जिस समय में धनिष्ठानक्षत्रसहित चन्द्रमा और सूर्य साथसाथ आकाश में उदित होते हैं, उस समय आदियुग (वेदाङ्गज्योतिष की युगगणनापद्धति का पहला युग) लगता है, माघ लगता है, तपश्शुक्ल (माघशुक्लपक्ष) भी लगता है और उदगयन भी लगता है। [यह श्लोक लगधमुनिप्रोक्त वेदाङ्गज्योतिष का है (श्लो.६)। इससे उदगयन के आरम्भ के नक्षत्र में कालक्रम से भिन्नता आ जाने पर भी सूर्य के उद-गयनारम्भ के द्वारा ही वैदिक नववर्षारम्भ का, तपोमास का (माघ महीने का) और शिशिरऋतु का निरूपण निर्दिष्ट होने की बात सम्यक्तया सूचित होती है]॥५४॥

चान्द्रा हि प्रभवाद्यास् तु तपश्शुक्लादिका मताः।
एते ह्यन्यैः क्वचिच् चैत्र-शुक्लाद्याः परिकीर्तिताः॥५५॥

वैष्णवादि पाँचवर्षवाले युगों में पडनेवाले चान्द्र प्रभव-विभवादि वर्ष तपश्शुक्लप्रतिपदा में (वैदिक आर्तव माघशुक्लप्रतिपदा में) प्रारम्भ होनेवाले होते हैं। किन्हीं लोगों से ये प्रभवादि अर्वाचीन राशिमूलक परिभाषानुसार की चैत्रशुक्लप्रतिपदा में प्रारम्भ होनेवाले बताए गए हैं। [वैदिकों के लिए चैत्रशुक्लप्रतिपदा में चान्द्र प्रभवादि वर्ष का प्रारम्भ होने की बात मान्य नहीं है। मगब्राह्मण वराहमिहिरादि से बताए गए बार्हस्पत्य प्रभवादि और उनकी वैदिक चान्द्र संवत्सर-परिवत्सरादि से समानता भी वैदिकों के लिए मान्य नहीं है]॥५५॥

संवत्सरादयश् चान्द्रा वेदोक्ता निश्चिता हि ते।
चान्द्र्या षष्ट्या हि युज्यन्ते न बार्हस्पत्यया क्वचित्॥५६॥

वेदोक्त संवत्सर-परिवत्सरादि वर्ष मुख्य रूप में चान्द्र हैं यह निश्चित है, ये संवत्सर-परिवत्सरादि वत्सर चान्द्र प्रभव-विभवादि साठ -वर्षों से प्रारम्भ में और समाप्ति में साम्य रखते हैं, बार्हस्पत्य प्रभव-विभवादि साठ वर्षों से कहीं भी साम्य नहीं रखते हैं॥५६॥

वैष्णवादियुगेष्वब्दाः षष्टिः स्युः प्रभवादयः।
चान्द्रा हि वत्सरास् ते हि गार्ग्यादिमुनिकीर्तिताः॥५७॥

१ २ ३ ४ ५
"प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।
६ ७ ८ ९ १०
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च॥५८॥
११ १२ १३ १४ १५
ईश्वरो बहुधान्यश् च प्रमाथी विक्रमो वृषः।
१६ १७ १८ १९ २०
चित्रभानुः सुभानुश् च तारणः पार्थिवोऽव्ययः॥५९॥
२१ २२ २३ २४ २५
सर्वजित् सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः।
२६ २७ २८ २९ ३०
नन्दनो विजयश् चैव जयो मन्मथ-दुर्मुखौ॥६०॥
३१ ३२ ३३ ३४ ३५
हेमलम्बो विलम्बोऽथ च विकारी शार्वरी प्लवः।
३६ ३७ ३८ ३९ ४०
शुभकृच् छोभनः क्रोधी विश्वावसु-पराभवौ॥६१॥
४१ ४२ ४३ ४४ ४५
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारण-विरोधकृत्।
४६ ४७ ४८ ४९ ५०
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः॥६२॥
५१ ५२ ५३ ५४ ५५
पिङ्गलः कालयुक्तश् च सिद्धार्थी रौद्र-दुर्मती।
५६ ५७ ५८ ५९ ६०
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः॥६३॥"

वैष्णवादि बारह युगों में प्रभवादि साठ वर्ष होते हैं। ये चान्द्र साठ संवत्सर गार्ग्यादि मुनि से बताए गए हैं [द्र.– निर्णयसिन्धु]॥५७॥

(१) प्रभव, (२) विभव, (३) शुक्ल, (४) प्रमोद, (५) प्रजापति, (६) अङ्गिरा, (७) श्रीमुख, (८) भाव, (९) युवा, (१०) धाता, (११) ईश्वर, (१२) बहुधान्य, (१३) प्रमाथी, (१४) विक्रम, (१५) वृष, (१६) चित्रभानु, (१७) सुभानु, (१८) तारण, (१९) पार्थिव, (२०) अव्यय (व्यय), (२१) सर्वजित्, (२२) सर्वधारी, (२३) विरोधी, (२४) विकृति, (२५) खर, (२६) नन्दन, (२७) विजय, (२८) जय, (२९) मन्मथ, (३०) दुर्मुख, (३१) हेमलम्ब, (३२) विलम्ब, (३३) विकारी, (३४) शार्वरी, (३५) प्लव, (३६) शुभकृत्, (३७) शोभन, (३८) क्रोधी, (३९) विश्वावसु, (४०) पराभव, (४१) प्लवङ्ग, (४२) कीलक, (४३) सौम्य, (४४) साधारण, (४५) विरोधकृत्, (४६) परिधावी, (४७) प्रमादी, (४८) आनन्द, (४९) राक्षस, (५०) अनल, (५१) पिङ्गल, (५२) कालयुक्त, (५३) सिद्धार्थी, (५४) रौद्र, (५५) दुर्मति, (५६) दुन्दुभि, (५७) रुधिरोद्गारी, (५८) रक्ताक्षी, (५९) क्रोधन, (६०) क्षय ये साठ चान्द्र प्रभवादि संवत्सर हैं। [बार्हस्पत्य-

प्रभवादि में करीब ८५ सौर वर्षों में एक वर्ष टूटता है, विक्रमसंवत् १९८९ में परम्परागत पत्रे में तारण और पार्थिव दो संवत्सर बीतने की और एक संवत्सर पार्थिव टूटने की बात उल्लिखित थी। अब कुछ वर्षों के बाद भी एक संवत्सर टूटनेवाला है। चान्द्रसंवत्सरों में तो कभी भी वैसा नहीं होता है। चान्द्र संवत्सर न टूटकर सदा क्रमशः आते हैं। श्रौत-स्मार्त कर्म के सङ्कल्प में चान्द्र संवत्सर ही स्मरणीय है बार्हस्पत्य संवत्सर स्मरणीय नहीं, ऐसी बात धर्मसिन्धु में भी प्रारम्भ में ही उल्लिखित है।]

[इन का सङ्कल्प में प्रयोग करने के समय में अकारान्त नामों का तो प्रभवापरनामके विभवापरनामके इत्यादि रूप में प्रयोग करना सरल ही है, अन्य में प्रजापत्यपरनामके, अङ्गिरोऽपरनामके, युवापरनामके, धात्रपरनामके, प्रमाथ्यपरनामके, चित्रभान्वपरनामके, सुभान्वपरनामके, सर्वजिदपरनामके, सर्वधार्यपरनामके, विरोध्यपरनामके, विकृत्यपरनामके, विकार्यपरनामके, शार्वर्यपरनामके, शुभकृदपरनामके, क्रोध्यपर-नामके, विश्वावस्वपरनामके, विरोधकृदपरनामके, परिधाव्यपरनामके, प्रमाद्यपरनामके, सिद्धार्थ्यपरनामके, दुर्मत्यपरनामके, दुन्दुभ्यपरनामके, रुधिरोद्गार्यपरनामके, रक्ताक्ष्यपरनामके—इस प्रकार के रूप में प्रयोग करना चाहिए]॥५८–६३॥

वर्षं यन् मानुषाणां स दिव्याऽहोरात्र उच्यते।
तत्त्रिंशता दिव्यमासस् तैर् हि द्वादशसङ्ख्यकैः॥६४॥
दिव्यं वर्षं स्मृतं प्राज्ञैस् तैर् द्वादशसहस्रकैः।
दिव्यं युगं सैव चतुर्युगी प्रोक्ता नृणामिह॥६५॥

मनुष्य का जो एक सौरचान्द्र वर्ष है वह दिव्य एक अहोरात्र कहा जाता है। वैसे तीस अहोरात्रों से एक दिव्य मास होता है। वैसे बारह मासों से विद्वानों से एक दिव्य वर्ष माना गया है। बारह हजार उन दिव्य वर्षों से एक दिव्य युग माना गया है। उसी दिव्य युग को इस मानुष लोक में मनुष्यों की चतुर्युगी (चौकडी) माना गया है॥६४–६५॥

मितम् मानुषवर्षाणाञ् चतुर्भिर् लक्क्षकैस् तथा।
द्वात्रिंशता सहस्रैश् च बुधैः कलियुगं स्मृतम्॥६६॥

चार लाख और बत्तीस हजार मानुष वर्षों से कलियुग होने की बात विज्ञ जनों से मानी गई है॥६६॥

द्विगुणन् द्वापरयुगङ् कलेस् त्रेतायुगम् पुनः।
त्रिगुणं स्यात् सत्ययुगञ् चतुर्गुणमिति स्स्थितिः॥६७॥

कलियुग के काल के द्विगुणित काल से द्वापर युग और त्रिगुणित काल से त्रेतायुग तथा चतुर्गुणित काल से सत्ययुग होने की बात शास्त्र में निश्चित रूप में बताई गई है॥६७॥

चतुर्युग्येकसप्तत्या सन्ध्या-सन्ध्यांशयुक्तया।
मन्वन्तरम् प्रकथितम् पुराणागमवेदिभिः॥६८॥

युगसन्ध्याओं और युगसन्ध्यांशों से युक्त इकहत्तर चतुर्युगियों से (चौकडियों से) एक मन्वन्तर होने की बात पुराण-आगम जाननेवाले विज्ञों से बताई गई है॥६८॥

मन्वन्तरैस् तादृशैश् च चतुर्दशभिरुच्च्यते।
ब्राह्मन् दिनन् दिव्व्ययुगसहस्स्रात्मकमेव तत्॥६९॥

उस प्रकार के चौदह मन्वन्तरों से ब्रह्मा जी का एक दिन कहा जाता है। वह ब्रह्मा का एक दिन एक हजार दिव्य युगों से युक्त होता है॥७०॥

चतुर्भिरर्बुदैर् द्वात्रिंशता कोटिभिरेव च।
युक्तो मानुषवर्षाणाङ् कालोऽयङ् कल्पसञ्ज्ञकः॥७०॥

तावत्काला निशा चेति ब्राह्मोऽहोरात्र ईदृशः।
तैस् त्रिंशता ब्राह्ममासस् तैश् च द्वादशसङ्ख्यकैः॥७१॥
ब्राह्मवर्षन् तादृशैश्च वर्षैः शतमितैः पुनः।
आयुस् स्याद् ब्रह्मणस् तच् च स्यात् परब्रह्मणो दिनम्॥७२॥
स त्वाकृख्यातो महाकल्पस् तावत्त्येव निशाऽस्स्य च।
एवम् प्राज्ञैःपरब्रह्माहोरात्रश् च प्प्रकल्पितः॥७३॥

यह ब्रह्मा जी के दिन का काल चार अरब बत्तीस करोड मानुष सौरचन्द्र वर्षों से युक्त होता है और इसको एक कल्प कहा जाता है। उक्त कल्प के काल से तुल्य कालवाली ब्रह्मा जी की रात्रि भी होती है। उक्त प्रकार के ब्रह्मा जी के दिन और रात से ब्रह्मा जी का एक

अहोरात्र होता है। वैसे ब्रह्मा जी के तीस अहोरात्रों से ब्रह्मा जी का एक मास होता है। वैसे ब्रह्मा जी के बारह मासों से ब्रह्मा जी का एक वर्ष होता है। उस प्रकार के ब्रह्मा जी के सौ वर्षों से ब्रह्मा जी का आयु होता है [उस को **पर** कहते हैं]। उस काल को परब्रह्म का एक दिन माना जाता है। उस काल को एक महाकल्प कहा गया है। उतने ही काल की परब्रह्म की रात्रि भी होती है। इस प्रकार से विज्ञ ऋषिमुनियों से परब्रह्म का अहोरात्र कल्पित किया गया है॥७०-७१॥

ब्रह्मणस् तु परस्याऽर्धे द्वितीये प्रथमेऽब्दके।
श्वेतवाराहकल्पाख्ये स्थिते हि सप्तमस्य च॥७४॥
वैवश्वतस्य तु मनोरन्तरे वर्तमानके।
अष्टाविंश्यां चतुर्युग्यां तुर्यं कलियुगं त्विदम्॥७४॥

ब्रह्मा जी के **पर** कहे जानेवाले आयु के दूसरे अर्धभाग में श्वेतवाराहकल्प नाम का प्रथम वर्ष चलते रहने पर और सप्तम वैवस्वत मनु का अन्तर (लोकव्यवस्थापनकाल) वर्तमान होने पर अट्ठाईसवीं चतुर्युगी (चौकडी) में यह वर्तमान चौथा युग कलियुग है॥७४॥

वैदिकानां सम्मतस्य युगस्याऽस्य तु वर्तते।
त्रिसप्तत्युत्तरः पञ्चसहस्रतमकोऽब्दकः॥७४॥

वैदिकों का सम्मत इस कलियुग का पाँच हजार त्रिहत्तरवाँ वर्ष इस समय में चल रहा है॥७४॥

चैत्रशुक्लप्रतिपदि कलेरब्दः प्रवर्तते।
अन्येषां तु मते यावतिथः षट्त्रिंशता ततः॥७५॥

न्यूनः कृष्णयुगाब्दस् तु वैदिकानां प्रवर्तते।
तपश्शुक्लप्रतिपदि तत्पूर्वस्यामिति स्थितिः॥७६॥

अन्य जनों के मत में चैत्रशुक्लप्रतिपदा में कलि का जितनवें वर्ष का प्रारम्भ होता है, उस से ३६ घटाने पर जितना अङ्क होता है, उतनवें कलिवर्ष का वैदिकों के मत में उक्त चैत्रशुक्लप्रतिपदा आने से पूर्व की तप शुक्लप्रतिपदा में (सौर-मकरराशिनिरपेक्ष वैदिक आर्तव चान्द्र माघशुक्लप्रतिपदा में) प्रारम्भ होता है, यह सिद्धान्त है॥७५-७६॥

तष्टाः कलियुगाब्दास् तु षष्ट्याऽऽदियुगसञ्चयः।
लब्धः, शेषस् तु प्रभवादिकवर्षप्रबोधकः॥७७॥
शेषसङ्ख्यापूरकस् तु चान्द्रोऽब्दोऽत्र प्रवर्तते।
तस्मिन् शेषे पञ्चभिस् तु तष्टे लब्धं युगङ् गतम्॥७८॥
शिष्टेऽत्र खे पञ्चमोऽब्दो लब्धितुल्ययुगस्य हि।
अन्यत्र तूत्तरस्यैव युगस्य च क्रमेण वै॥७९॥
संवत्सरादयः शेषसङ्ख्यायाः पूरकाः खलु।
प्रथमाद्या वत्सरा हि ज्ञातव्या ब्राह्मणैः सदा॥८०॥

उक्त रीति से तपश्शुक्लप्रतिपदा में प्राप्त होनेवाली कलिवर्षसङ्ख्या को साठ से भाग लेवे, लब्धि कलियुग के आरम्भ के बाद बीते हुए साठ वर्षों के **युगसङ्घ** का समूह होता है; शेष प्रभव-विभवादि चान्द्र संवत्सरों का बोधक होता है। शेष को पाँच से भाग देने पर जो लब्धि होगी वह वर्तमान साठवर्षवाले युगसङ्घ में बीते हुए **पाँच वर्षवाले वैष्णवादि युग** की सङ्ख्या होती है; इस प्रकार भाग लेने पर शेष शून्य हो तो लब्धि जितनी है उतनवें वैदिक वैष्णवादि पाँच वर्षवाले युग का पाँचवाँ वर्ष **वत्सर** होता है, शेष १ अथवा २ अथवा ३ अथवा ४ हो तो वैदिक ब्राह्मणों को सदा ही लब्धि से एक सङ्ख्या आगेवाले वैदिक पाँच वर्ष वाले वैष्णवादि युग के **संवत्सरादि** पाँच वर्षों में से क्रमशः पहला अथवा दूसरा अथवा तीसरा अथवा चौथा वर्ष जानना चाहिए॥७७-८०॥

संवत्सराद्यैर् वेदोक्तैः पञ्चकैः क्रमशस् सदा।
प्रवर्तमानैः षष्टिः स्युश् चान्द्रा हि प्रभवादयः॥८१॥

सर्वदा क्रम से घूमते रहने वाले संवत्सर-परिवत्सरादि पञ्चवर्षात्मक वैदिक युगों से प्रभव-विभव इत्यादि साठ चान्द्र संवत्सर होते हैं॥८१॥